स्वराज्य तत्त्व मीमांसा

अर्थात्

आत्मकर्तृत्व प्रकाश ।

लेखक –

सर रवीन्द्र नाथ ठाकुर

स्वराज्य तत्त्व मीमांसा।

अर्थात्

आत्मकर्त्तत्त्व प्रकाश

जगत्-विख्यात महाकवि सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर

के एक प्रबन्ध का मर्मानुवाद।

अनुवादक

एक देश भक्त।

——:o:——

प्रकाशक—

कृपानारायण,

राष्ट्रीय पुस्तक भण्डार,

कुली बाज़ार, कानपूर।

प्रथम वार १००० } सम्वत् १९७४ { मूल्य ।)

भूमिका ॥

हमारे पाठक ! जगद्विख्यात महा कवि सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के० टी०, डाक्टर आफ लिटरेचर, के नाम से अवश्य ही परिचित होंगे। साहित्य-सम्राट् रवीन्द्रनाथ की असाधारण विद्वत्ता, अलौकिक योग्यता, अपूर्व कवित्व-शक्ति, प्रगाढ़ देश भक्ति और सर्व-विषयिनी प्रतिभा आज सारे संसार में प्रसिद्ध हो रही है। साहित्य-जगत में वे अपना सानी नहीं रखते। सच पूछिये तो वे हमारे देश के एक उज्वल रत्न हैं। ऐसे ही सपूतों के कारण भारत माता का गौरव आज भी दुनियां में बना हुआ है। कवि कुल चूणामणि रवीन्द्रनाथ भारत जननी के उन सपूतों में हैं जिन्होंने केवल अपने देश ही में नहीं किन्तु सरस्वती देवी के प्रधान लीला क्षेत्र यूरोप और अमेरिका में भी अपनी योग्यता का सिक्का जमा दिया है। साहित्य सम्राट् रवीन्द्रनाथ के मस्तिष्क सागर से अब तक न मालूम कितने ग्रन्थ रत्न निकल चुके हैं। नाटक, उपन्यास, आख्यायिका, काव्य राज नीति, समाज नीति, धर्म नीति, आदि सभी विषय के ग्रन्थ रचने में आप सिद्ध हस्त हैं।

रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा साहित्य के सभी अंगों में स समय पर अपना चमत्कार दिखाती रहती है और इन रत्न प्रविसिनी लेखनी से नाटक उपन्यास और क आदि निकलते ही रहते हैं परन्तु कभी कभी खास प्रसंगों पर ऐसे प्रबन्ध भी निकल जाते हैं जो विचार में एक हलचल पैदा कर देते हैं। और चिन्ता आत्माओं को ज़बरदस्ती अपनी ओर खींच ले आप के इस श्रेणी के लेख निबन्ध बड़े ही उपयोगी

और सुपाठ्य होते हैं। आप का एक ऐसा ही गम्भीर भाव पूर्ण और सारगर्भित प्रबन्ध हाल ही में प्रकाशित हुआ है। केवल बंगाल ही में नहीं किन्तु सारे भारतवर्ष में इस की चर्चा हो रही है, और इस ने विचार शील व्यक्तियों के सम्मुख सोचने, समझने और मनन करने की एक अपूर्व सामग्री इकट्ठी कर दी है। इस महत्वपूर्ण निबन्ध में जो विचार प्रकट किये गये हैं वे ऐसे मार्के के हैं कि जो एक बार उन्हें पढ़ेगा उस के मुंह से वाह वाह के सिवाय और कुछ न निकलेगा। ऐसी खरी खरी बातें कही गई हैं कि उन के पढ़ने वाले के चित्त पर स्थायी प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता।

बङ्गभाषा में सब से पहले यह प्रबन्ध प्रकाशित हुआ था उस के निकलते ही सारे बंगाल में एक हलचल सी मच गई और शिक्षित समुदाय में इस की आलोचना प्रत्यालोचना होने लगी। परन्तु उस की चर्चा केवल बंगाल ही में [illegible] न रही किन्तु कुछ ही दिनों में सारे भारतवर्ष में [illegible] गई। कारण यह कि इस महत्वपूर्ण प्रबन्ध का अनुवाद [illegible] हो सप्ताहों में अंगरेज़ी तथा गुजराती, मराठी आदि [भा]रतवर्ष की कितनी ही देशी भाषाओं में निकल गया। [क]हने की आवश्यकता नहीं कि इस समय सारे देश में इस [सा]रगर्भित निबन्ध की धूम है। इसी से आप समझ सकते [हैं] कि जगद्विख्यात महा कवि रवीन्द्रनाथ का यह लेख [कैसे] मार्के का होगा। उसी का भावार्थ आज हम अपने [हिन्]दी भाषा भाषी देश वासियों की सेवा में भेंट करते हैं। [ज]ैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं यह निबन्ध भारतवर्ष [की] कितनी ही भाषाओं में निकल चुका है। परन्तु जो

पुस्तिका आपके सामने उपस्थित है वह मूल बंगला प्रबन्ध का समानुवाद है। अनुवाद करने में हमने बड़ी स्वतन्त्रता से काम लिया है। शब्दों की ओर ध्यान न दे कर केवल भाव को ग्रहण किया है और उसी का आशय सरल हिन्दी में अपने पाठकों को समझाने की चेष्टा की है। जहां तक हो सका मूल का भाव हम से नहीं छूटने पाया, परन्तु मूल लेख के जो अंश हमने अनावश्यक समझे हैं उन्हें छोड़ दिया है। जहां तक हो सका है हमने इस बात की चेष्टा की है कि रवीन्द्रनाथ के विचार उन्हीं की शैली में आप लोगों के सम्मुख रक्खे जायँ। क्योंकि उन में एक विशेष प्रकार की मरमता, मधुरता और मनोहरता है। नहीं कह सकते कि हमें इस में कहां तक सफलता हुई है। परन्तु इस में सन्देह नहीं कि जो कोई इस किताब को पढ़ेगा वह अपने को एक नये ही चिन्ता जगत में विचरता हुआ पावेगा। और वह देखेगा कि इस समय देश की क्या दशा है, उस के सामने कौन कौन सी समस्यायें उपस्थित हैं और उन के हल करने का क्या उपाय है। हम चाहते हैं कि लोग इस पुस्तक को ध्यान से पढ़ें और इस में जो विचार प्रकट किये गये हैं उनको मनन करके अपनी यह सम्मति स्थिर करें कि इस समय हम लोगों का क्या कर्तव्य है और हम लोग अपनी स्वर्गादपि गरीयसी जननी जन्म भूमि के दुःखों और क्लेशों को किस प्रकार दूर कर सकते हैं। यदि हमारी इस प्रार्थना पर एक भी माई के लाल ने ध्यान दिया तो हम अपने तुच्छ परिश्रम को सफल समझेंगे और अपने को कृतकृत्य मानेगे।

अनुवादक,

एक देशभक्त।

जीवनी।

महा कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर।

साहित्य सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर का जन्म सन् १८६१ ई० में कलकत्ता नगर में हुआ था। आप चार भाई हैं। उनमें से सब से छोटे आप ही हैं। आप के पिता सुप्रसिद्ध महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर बड़े ही सत्यनिष्ट, त्यागी सचरित्र महा पुरुष थे। आप की माता का देहान्त आप की बाल्यावस्था ही में हो गया था। जब आप बहुत छोटे थे तभी से आप को प्राकृतिक दृश्यों के देखने का शौक उत्पन्न हो गया था। प्रकृति से प्रेम करना आप ने बचपन ही में सीख लिया था और उसी को आप अपनी माता समझते थे।

बाल्यावस्था में पहले तो आपने कुछ दिनों घर पर शिक्षा पाई इसके बाद स्कूल में पढ़ने भेजे गये। परन्तु स्कूल की निर्जीव, निरस और निरानन्द शिक्षा आप को न भाई। इस लिए आप ने शीघ्र ही उस से नाता तोड़ लिया यह देख कर आप के पिता महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुर ने आप से हिमालय पर्वत पर चलने को कहा। क्योंकि वे उन दिनों अकसर पहाड़ ही पर रहा करते थे। रवीन्द्रनाथ को यह बात बहुत अच्छी लगी और वे झट से वहां चलने को तैयार हो गये। रवीन्द्रनाथ का कथन है कि पर्वत बास का उन का यह समय बड़े ही आनन्द और अल्हाद में बीता।

रवीन्द्रनाथ का साहित्यक जीवन बड़ी ही कम उम्री में

प्रारम्भ हो गया था। सन्ध्या संगती और प्रभात संगति आप की सब से पहली मौलिक रचनाये हैं। जिस समय आप की अवस्था केवल १४ वर्ष की थी उसी समय आपने एक गीति नाट्य रच डाला था। इसका नाम वाल्मीक की प्रतिभा है। इसके बाद आप भिन्न भिन्न मासिक पत्रों में लेख लिखने लगे। उस समय आप के सब से अधिक लेख भारतीय में प्रकाशित हुए थे। क्योंकि यह पत्रिका आप ही के कुटुम्बियों द्वारा संचालित होती थी।

१७ वर्ष की उम्र में आप इंगलैण्ड में पढ़ने के लिए भेजे गये। वहां आप ने एक साल तक लण्डनके यूनिवरसिटी कालेज में शिक्षा पाई तत्पश्चात् आप अपने देश को लौट आये। परन्तु इस के कुछ ही दिनों बाद आप फिर बैरिस्टी पढ़ने के लिए इंगलैण्ड भेजे गये। परन्तु कानून का ऐसा सूखा विषय आप की प्रकृति के विरुद्ध था। इस लिए उस के पढ़ने में आप का जी न लगा। अतएव आप सब छोड़ छाड़ कर घर चले आये। बस उसी समय से कविता, गान, नाटक, उपन्यास, आख्यायिका और निबन्धों के ढेर के ढेर आप की लेखनी से निकलने लगे।

रवीन्द्रनाथ का विवाह २३ वर्ष की उम्र में हुआ था विवाह हो जाने पर महर्षि ने उन से घर की ज़मींदारी का प्रबन्ध करने के लिए कहा। पहले तो रवीन्द्रनाथ महाशय ने इसे ना पसन्द किया। परन्तु पीछे से इस काम में उन का जी लगने लगा। सियालदा में रहकर ठाकुर महाशय ने अध्ययन और मनन के द्वारा अपने ज्ञान क्षेत्र को

विस्तीर्ण कर लिया। कोई वहां आप १७ वर्ष तक रहे। इसी समय आप की स्त्री, कन्या और कनिष्ठ पुत्रका देहान्त हुआ।

इन प्रिय जनों के वियोग का आप को दुःख तो हुआ ही परन्तु साथ ही साथ आप की सहानुभूति का क्षेत्र भी बहुत विस्तीर्ण हो गया और उसी समय से आप की रचनाओं में एक प्रकार की अध्यात्मिकता दृष्टिगोचर होने लगी। उन्हीं दिनों आप ने गीताञ्जलि की रचना की।

इस के बाद आप ने इंगलैण्ड की तीसरी बार यात्रा की। इंगलैण्ड जाने के दो उद्देश्य थे। एक तो स्वास्थ्य का सुधारना और दूसरा अपने पुत्र के साथ रहना जो उस समय इंगलैण्ड में पढ़ रहा था। वहीं पर आप ने अपनी कुछ बंगला कविताओं का अंगरेजी अनुवाद किया और उन्हें पुस्तिकाकार प्रकाशित किया। इन पुस्तकों ने इंगलैण्ड में एक हलचल सी मचा दी। उन्हें पढ़ कर केवल इंगलैण्ड ही नहीं किन्तु सारे यूरोप और अमेरिका के विद्वान् दंग रह गये और दांतों तले उंगली दबा कर कहने लगे कि धन्य है वह देश कि जहां ऐसे महा कवि ने जन्म लिया। उस समय सारी पाश्चात्य विद्वन्मण्डली एक स्वर से यह कहने लगी कि रवीन्द्रनाथ के सदृश महा कवि इस समय संसार में दूसरा नहीं। इस का फल यह हुआ कि सन् १९१३ ई० में आप को एक लाख बीस हज़ार का जगद्विख्यात नोबिल पुरस्कार दिया गया। इस पुरस्कार के लिए बड़े बड़े विद्वान् तरसा करते हैं। यह केवल उन्हीं को प्राप्त होता है जो अपने समय के संसार भर में अद्वितीय महा पण्डित समझे जाते हैं। रवीन्द्रनाथ ने यह

पुरस्कार प्राप्त करके यह सिद्ध कर दिया कि कवित्व शक्ति में वे संसार भर में अपना सानी नहीं रखते और उन की साहित्य सम्राट् उपाधि सार्थक है। परन्तु धन्य है सरस्वती के इस वर पुत्र! को आप ने एक लाख बीस हज़ार रुपये की इस भारी रक़म में से एक पैसा भी अपने हाथ से नहीं छुआ और सब का सब अपने बोलपुर के विद्यालय को दान कर दिया।

भारतवर्ष को लौटने पर कलकत्ता विश्व-विद्यालय ने आप को डाक्टर आफ लिटरेचर की सुप्रतिष्ठित पदवी से विभूषित किया। इसके कुछ ही दिनों के बाद भारत सरकार ने आप को नाइट बनाया। तभी से आप सर रवीन्द्रनाथ कहलाने लगे।

कुछ दिनों तक घर पर रह कर आपने जापान और अमेरिका की यात्रा की। वहां पर बड़े बड़े विद्वानों के सामने आप के कितने ही व्याख्यान हुए जिन्हे वहां वालों ने बहुत पसन्द किया। इन व्याख्यानों में जो धन आप ने प्राप्त किया वह भी सारा का सारा अपने विद्यालय को दान कर दिया। जिस समय रवीन्द्रनाथ अमेरिका में थे उसी समय केनाड़ा वालों ने उन्हें अपने यहां व्याख्यान देने के लिए बुलाया। परन्तु हमारे देश भक्त महा कवि ने वहां जाने से साफ इन्कार कर दिया। उन्होंने कहा कि केनाड़ा वाले हमारे देश भाइयों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करते। इस लिए हम ऐसी जगह नहीं जा सकते जहां हमारे देश वासियों का अपमान होता हो।

रवीन्द्रनाथ महाशय एक आदर्श ज़मींदार हैं। आप

अपनी ज़मींदारी का बहुत अच्छा प्रबन्ध करते हैं। और अपनी रियासत के किसानों से बड़ी ही उदारता सरलता और प्रेम भाव से मिलते हैं। अकाल पड़ने पर आप अकसर अपनी प्रजा का लगान माफ़ कर देते हैं। आप की ज़मींदारी में कई एक प्राइमरी स्कूल हैं। इस के सिवाय एक अंगरेज़ी स्कूल, एक मुफ़्त दवाखाना तथा एक कृषि बैंक भी है। आप ने अपनी रियासत के बोलपुर ग्राम में एक ब्रह्मचर्य आश्रम भी खोल रक्खा है जिस में प्राचीन आदर्शों के अनुसार नये ढंग की शिक्षा मुफ़्त प्रदान की जाती है। इस विद्यालय में मातृ भाषा के द्वारा बालकों को शिक्षा दी जाती है। ऋतु अनुकूल होने पर अकसर खुली हवा में पेड़ों के नीचे बैठ कर बालक अपना पाठ पढ़ते हैं।

अब तक जो कुछ हमने लिखा है उस से आप समझ सकते हैं कि साहित्य सम्राट् सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर कैसे साधारण विद्वान, अलौकिक प्रतिभा शाली महा कवि, आदर्श देशभक्त और परोपकारी महा पुरुष हैं। सच पूछिये तो आप भारत वर्ष के एक उज्ज्वल रत्न हैं। भगवान् करें ऐसे पुरुष रत्न हमारी भारत माता की कोख से बारम्बार जन्म ग्रहण करें।

स्वराज्य तत्त्व मीमांसा।

अर्थात्

आत्मकर्तृत्व प्रकाश।

थोड़ी सी वर्षा होते ही गली कूचों और सड़कों पर पानी भर जाता है और रास्ता चलनेवालों को उस के कारण नाना प्रकार के कष्ट उठाने पड़ते हैं। अपने बचपन से लेकर आजतक हम यही बात देख रहे हैं। चीनी लोगों ने अपनी सनातन चोटी एक दिन में काट कर साफ कर दी। जापान ने भी कालसागर में एक ऐसी छलांग मारी कि पांच सौ वर्षों का रास्ता पचास ही वर्ष में पार कर लिया। परन्तु वर्षाकाल में हमारे रास्तों की जो दशा पचास वर्ष पहले थी वही आज भी बनी हुई है। बाल्यकाल से जो बात नित्य प्रति देखी जाती है वह सत्य हो जाती है। इस लिए बरसाती रास्तों की यह दशा भी हम लोगों के लिए सत्य हो गई है।

परन्तु इस साल चीतपुर रोड * में जलस्रोत के साथ जनस्रोत का द्वन्द देखकर हमारे मन में बहुत दिनों के बाद यह विचार उत्पन्न हुआ कि हम लोग इसे क्यों सहें। सहन न करना ही अच्छा है यह बात चौरंगी रोड † का एक

---

* हिन्दुस्तानी मोहल्ला। † अंगरेजी मोहल्ला।

बार चक्कर लगा आने ही से अच्छी तरह समझ में आ सकती है। एक ही शहर है और एक ही म्यूनीसिपेलिटी है। परन्तु तब भी यह फ़रक़ क्यों? इसका कारण यही है कि हमें सहन है और उन्हें सहन नहीं।

वर्तमान समय में हमें जो कुछ कष्ट मिल रहा है वह दूर हो सकता है इस बात का विश्वास हम लोगों को रत्ती भर भी नहीं। हम लोग दुःख को अपने सिरमाथे लेने के लिए सदा तैयार रहते हैं, परन्तु उसके प्रतिकार का उपाय कुछ भी नहीं करते। यह बात हम लोगों की समझ ही में किसी तरह नहीं आती कि हम भी कुछ कर सकते हैं। कहते हैं कि किसी समय एक मछली कांच के एक टब में डाल दी गई। इधर उधर बहुत सिरमारने पर उसे मालूम हुआ कि यह कांच है पानी नहीं। इसके बाद वह एक बड़े तालाब में छोड़ दी गई। परन्तु तब भी उसकी समझ में यह न आया कि यह पानी है कांच नहीं। इसी से उस को इधर उधर घूमने फिरने का साहस न हुआ। क्योंकि उसको भय था कि ऐसा न हो कि इधर उधर घूमने से कहीं सिर कांच से टकरा जाय। हम लोगों की भी ठीक ऐसी ही दशा है। हमें भी सदा यह डर लगा रहता है कि इधर उधर हिलते डुलते ही हमारे सिर में टक्कर अवश्य लगेगी। इस लिए जहां पर हम लोग खुलकर कुछ काम कर सकते हैं वहां भी कुछ नहीं करते और चुप चाप पड़े रहते हैं।

अभिमन्यु ने माता के गर्भ ही में व्यूह में प्रवेश करना सीख लिया था, परन्तु उसके बाहर होने की विद्या उन्होंने नहीं सीखी। इसी से वे महारथियों द्वारा घेरे जाकर मारे

गये। हम लोगों ने भी पैदा होने के पहले ही बन्धन में पड़ने की विद्या सीखी है, बन्धन तोड़ने की नहीं। इसी से संसार के सभी रथियों और महा-रथियों की यहां तक कि प्यादों तक की मार हम लोगों को खाना पड़ती है। दूसरों की आज्ञानुसार चलने और लकीर के फ़क़ीर बने रहने के हम ऐसे अभ्यासी हो गये हैं कि हज़ार समझाने पर भी यह हमारी समझ में नहीं आता कि हम भी कुछ कर सकते हैं। यहां तक कि विलायती चशमा लगाने पर भी यह बात हमें नहीं सूझ पड़ती।

मनुष्य के लिए सब से बड़ी बात यह है कि कर्तृत्व का अधिकार ही मनुष्यत्व का अधिकार है। नाना प्रकार के मन्त्रों, श्लोकों और विधिविधानों के द्वारा यह बात जिस देश में दबा दी गई हो और भूल करने के भय से मनुष्य जहां आचारों के द्वारा अच्छी तरह कसकर बांध दिया गया हो, रास्ता चलते चलते कहीं दूर न निकल जायँ इस डर से जहां लोग खुद अपना रास्ता तोड़ डालते हैं उस देश में मनुष्य अपने ऊपर असीम अश्रद्धा करने लगते हैं और यह समझ लेना चाहिए कि वहां दास तैयार करने का एक बड़ा भारी कारख़ाना खुल गया है।

हमारे राज पुरुष भी शास्त्रीय गम्भीरता के साथ कहते हैं। तुम लोग भूल करोगे, इस लिए तुम्हें कर्तृत्व का अधिकार देना उचित नहीं।

कुछ भी हो, मनु-पराशर की यह वाणी अंग्रेज़ी गले से बड़ी ही बेसुरी मालूम होती है। हम लोग इस का जो

उत्तर देते हैं वही उनका असली सुर है। हमारा कहना है कि भूल करना उतना सर्वनाशकारी नहीं जितना कि स्वाधीन कर्तृत्त्व का न मिलना। भूल करने की स्वाधीनता जिसे प्राप्त है वही सत्य को पा सकता है। निर्भूल होने की आशा से यदि निर्जीव बनना पड़े तो इस से तो भूल करना ही अच्छा।

राज पुरुषों को यह भी याद रखना चाहिए जो आत्म कर्तृत्त्व आज दिन वे भोग रहे हैं वह कितनी भूलों और गड़बड़ों के बाद उन्हें प्राप्त हुआ है। इंगलैंड में पार्लामेंट की जो उन्नति हुई है। वह सहज ही नहीं हुई न मालूम कितनी मार काट, लड़ाई झगड़े और अविचार अव्यवस्था के बाद उसकी यह उन्नति हुई है। कोई समय था जब मेम्बर लोग जुर्माना और दंड के भय से पार्लामेंट में हाज़िर होते थे। इसके सिवा विलायत वालों ने जो जो भूलें की हैं उनका भी ठिकाना नहीं। अमेरिका और आयरलैंड वाली बात से लेकर बोरयुद्ध, डार्डनेलीज़ और मेसोपोटेमिया वाली घटनाओं तक भूलों की एक लम्बी फेहरिस्त पेश की जा सकती है। भारत विभाग की भूलों की भी कमी नहीं, परन्तु उसके ज़िक्र करने की यहां ज़रूरत नहीं। अमेरिका में भी कुबेर के दूतों की कुकीर्तियां सामान्य नहीं कही जा सकती फ्रांस में भी ड्रेफूस के मामले में जो अन्याय-अत्याचार हुआ था वह कुछ कम भयानक नहीं। असल बात तो यह है कि आत्म-कर्तृत्व का अधिकार जिसे प्राप्त है वही भूल करके भूलों को दूर कर सकता है। इस से मनुष्य की अगाड़ी पिछाड़ी

बांध कर हलुवा खिलाने की अपेक्षा स्वाधीनता-पूर्वक अन्न उपार्जन की चेष्टा में उसको उपवास करने देना अच्छा है।

सब से बड़ी बात तो यह है कि राष्ट्रीय आत्मकर्तृत्व प्राप्त होने से केवल यही नहीं कि सुव्यवस्था और दायित्व बोध उत्पन्न होता है, किन्तु मनुष्य के मन का आयतन बढ़ जाता है—उसमें उदारता आ जाती है। छोटी छोटी बिरादरियों में जिनके मन बंधे रहते हैं उन्हें राष्ट्रीय आत्मकर्तृत्व का अधिकार प्राप्त होने पर मानवजाति को बड़ी परिधि के बीच से देखने का सुयोग प्राप्त होता है। ऐसा सुयोग न मिलने से मनुष्य मनुष्यता के हिसाब से छोटा हो जाता है॥ ऐसी दशा में उसकी चिन्ता उसकी शक्ति उसकी आशायें सभी छोटी होजाती हैं। मनुष्य के आत्मा की यह खर्वता उसके प्राणनाश से कहीं बढ़कर अमंगल-जनक है। इस लिऐ भूल चूक की आशङ्का मान कर भी हम आत्मकर्तृत्व या स्वराज्य चाहते हैं। हम गिरते पड़ते चलेंगे; पर चलेंगे अवश्य। इस लिए कृपा करके केवल हमारे गिरने की ही ओर देखकर हमारे चलने फिरने में बाधा न डालिए।

यह जवाब ही सच्चा जवाब है। यदि कोई दृढ़ प्रतिज्ञ मनुष्य यही उत्तर देकर सरकार के पीछे पड़ जाय तो सरकार उसे नज़रबन्द कर सकती है; परन्तु सर्व साधारण में उसकी वाह वाह अवश्य होगी। परन्तु यदि ठीक ऐसा ही उत्तर समाज के मुखियाओं को दिया जाय, यदि उन से कहा जाय—तुम लोग कहते हो कि यह कलियुग है; हम लोगों की बुद्धि कम है, स्वाधीन विचार में हम लोग भूल कर सक्ते हैं;

स्वाधीनता पूर्वक व्यवहार करना अपराध है; इस लिए मस्तिष्क को अग्राह्य करके पोथी को शिरोधार्य करने के लिए हमारा शिर बनाया गया है। परन्तु इतने बड़े अपमान की बात मानने के लिए हम तैयार नहीं। तो समाज के मुखिया और आचार्य पण्डित तुरन्त आंखें लाल पीली करने लगेंगे और फ़ौरन ही सामाजिक नज़रबन्दी की आज्ञा देंगे। जो लोग राजनैतिक आकाश में उड़ने के लिए सदा लालायित रहते हैं वही सामाजिक मामले में अपने पैरों में बड़ी खुशी से बेड़ियां पहनने को तैयार हैं।

मूल तत्व एक ही है। उसको समझ लेने पर मनुष्य समाज में भी सत्य हो सकता है और राष्ट्रीय व्यापार में भी। उसी मूल तत्व को समझने में ही चीतपुर और चौरङ्गी में फ़रक है। चीतपुर वालों का ख्याल है कि सब कुछ ऊपर वालों के हाथ में है। इसी से वे हाथ पर हाथ रक्खे चुप चाप बैठे रहते हैं। परन्तु चौरङ्गी वालों का कहना है कि हमारे हाथ में यदि कुछ न होता तो हमारे हाथ ही परमेश्वर न बनाता। ऊपर वालों के हाथ के साथ हमारे हाथों का भी एक अविच्छिन्न योग है, चौरङ्गी वाले इसी बात को मानते हैं। इसी से उन्हों ने जगत को अपने हाथ में कर लिया है। और चीतपुर वाले इस बात को नहीं मानते; इसी से जगत् उनके हाथ में नहीं और वे जहां जाते हैं वहां उनका अपमान होता है।

हमारे घर का गढ़ा हुआ नियम ही सब से बड़ा है, यह बात वही मान सकते हैं जिनकी आंखें बन्द हैं। परन्तु आंखें खोल कर देखने से मालूम होता है कि इस विश्व संसार में एक

अहत नियम है। अपनी चेष्टा से उस नियम पर दखल करने ही से सुख, समृद्धि और शक्ति प्राप्त हो सकती है। यह सिद्धान्त ही वर्त्तमान यूरोपियन सभ्यता की नींव है। व्यक्ति-विशेष को सफलता किसी विशेष विधान से नहीं किन्तु विश्व विधान से प्राप्त हो सकती है—यह बात अच्छी तरह समझ लेने ही के कारण शक्ति के क्षेत्र में यूरोप ने इतनी बड़ी मुक्ति प्राप्त की है।

परन्तु हम लोग सदा लम्बी सांस लेकर कह उठते हैं कि जो कुछ होता है वह 'कर्ता' की इच्छा से। अच्छा तो वह कर्ता कौन है? घर के बड़े बूढ़े, पुलिस के दरोग़ा, तीर्थों के पन्डे पुरोहित, वंश के गुरु या आचार्य अथवा शीतला, काली, मदार बाबा, सैयद, शनि, मंगल, राहु, केतु, इत्यादि। इस तरह कर्त्ता को हज़ार नामों से पुकार कर अपनी शक्ति को हम हजार टुकड़ों में बांट देते हैं।

कालेजों में पढ़ने वाले कह उठेंगे कि हम तो यह सब मानते नहीं हम तो शीतला पूजने के बजाय चेचक की टीका लगवाते हैं। यहां तक कि मच्छड़ बाहिनी 'मलेरिया' को हम लोगों ने अभी तक 'देवी' नहीं माना, उसको कीड़ा ही समझते हैं।

केवल मुख से किसी बात को मानने या न मानने से कुछ काम नहीं चलता। पर असल बात तो यह है कि इस मानने के विष ने हम लोगों के मन जर्जरित कर दिये हैं। इस मानसिक कायरता का कारण चराचर व्यापी एक अनिश्चित भय है। अखण्ड विश्व-नियम के मध्य में प्रकाशित अखण्ड विश्वशक्ति को न मानने के कारण ही हमलोग

हज़ारों तरह के भय की कल्पना करके अपनी बुद्धि को बिगाड़ बैठे है। भय बड़ी बुरी चीज़ है। वह मनुष्य को किंकर्त्तव्यविमूढ़ बना देता है। हमारे राजपुरुषों ही को देखो। जब राज्यशासन के किसी छिद्र में से होकर भय उनके पास तक पहुंचता है तब वे भी अपने पाश्चात्य स्वधर्म को भूल जाते हैं। जो कानून उनकी शक्ति का मुख्य अधार है उसी पर वे आंखे बन्द करके कुल्हाड़ा चलाने लगते हैं। उस समय न्याय-रक्षा की वे कुछ बड़ी आवश्यकता नही समझते। अपने प्रेस्टिज (रोबदाब) की रक्षा को उस से बढ़कर समझते हैं और मान लेते हैं कि प्रजा के नेत्रों के जल को जबर्दस्ती कालेपानी भेज देने से उनके लिए लालमिर्चों का धुआं खूब मनोरम हो जायगा। त्रिगव बिधान के प्रति अविश्वास और अपने विशेष विधान के प्रति पूर्ण भरोसा इसी को कहते हैं। इसका मूल कारण थोड़ा सा भय, थोड़ा सा लोभ और अपने काम को सीधा करने की थोड़ी सी चतुरता है। हमलोग भी अन्धभय के मारे मनुष्य धर्म को विसर्जन करने के लिए सदा तैयार रहते हैं। चाहे कहीं कुछ हो या नहो, हम लोग घबराकर सब कुछ हाथ जोड़े मान रहे हैं। इस लिए चाहें हमलोग जीव विज्ञान पढ़े चाहें वस्तुविज्ञान और चाहे राष्ट्रतन्त्र के इतिहास की परीक्षा पास करें; जो 'कर्त्ता' को मंजूर होगा वही होगा—इस बीजमन्त्र को हम अपने मन से दूर नहीं कर सकते। इसीलिए यद्यपि हमारे वर्तमान काल के भाग्य से हम लोग दसजने मिलकर काम करने लगे हैं तथापि हमारे पिछले समय के भाग्य से दसजनों का काम

एक जने का काम नहीं बनने पाता। न मालूम कहां से एक न एक 'कर्त्ता' आकर उस काम में बिघ्न डाल देता है। इस का मुख्य कारण यह है कि इस देश में लोग उठना बैठना, खानापीना, बिवाह चितारोहण, पिण्डग्रहण आदि सब काम 'कर्त्ता' की इच्छानुसार करते हैं। किस काम के करने से पुण्य होता है किससे पाप, किसके हाथ का खाने से धर्म रहता है और किसके हाथ का खाने से धर्म जाता है; कहार और नाई आदि की छुई हुई पूड़ी और रोटी में क्या अन्तर होता है, म्लेच्छों की बनाई शराब और उन्हीं के छुये हुए जल में क्या बिशेषता होती है—इन बातों पर स्वयं कोई बिचार नहीं कर सकता, 'कर्त्ता' की इच्छा के अनुसार इन बातों को मानना उचित है। यदि कोई कहे कि पानी पांडे के मैले घड़े का गन्दा पानी पीने के अयोग्य है और भिशती मियां का फिल्टर किया हुआ शुद्ध जल पवित्र तथा स्वास्थ्यकर है तो ग़ज़ब हो जाय। लोग यही कहने लगेंगे कि यह तो तुच्छयुक्ति की बात है 'कर्त्ता' की ऐसी इच्छा नहीं है। और यदि कोई यह कह दे कि न होगी 'कर्त्ता' की इच्छा। तो बस हुक्का पानी बन्द—बिरादी से ख़ारिज। ब्याह शादी यहां तक कि अन्त्येष्टि संस्कार तक में बाधा पड़ जाय। ऐसे निष्ठुर अत्याचार के द्वारा जो लोग मामूली खाने पीने की बातों में अपना अधिकार जमाते हैं और इसको अच्छा भी समझते हैं उन्हें राष्ट्रीय अधिकार मांगते समय न जाने क्यों सङ्कोच नहीं मालूम होता।

अब केवल अपनी शक्ति के मूलधन से जन साधारण का

कारबार नहीं चलता तब मनुष्य अपने सभी कामों में दैव, ग्रह और अन्य दूसरे लोगों से सहायता चाहता है। इस भाव का वर्णन पुराने काव्यों में खूब अच्छी तरह किया गया है। कहते हैं कि चांद नाम का एक सौदागर था। उसके मन का आदर्श महान था। लिखा है कि जिस देवता को वह निकृष्ट समझ कर किसी तरह मानने के लिए राज़ी न था अन्त में बहुत से कष्ट उठाकर उसी की शक्ति के सामने उस को हार माननी पड़ी। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस शक्ति के साथ ज्ञान या न्यायधर्म का योग नहीं होता। इस शक्ति का आधार जितना ही यथेच्छाचारी होता है उतना ही वह भयङ्कर समझा जाता है और उतनी अधिक उसकी स्तुति बन्दना की जाती है। विश्वकर्तृत्व की इस धारणा के साथ उस समय के राष्ट्रीय कर्तृत्व का घनिष्ठ सम्बन्ध था। उस ज़माने में आईन कानून का पता न था; जिसकी लाठी उसकी भैंस समझी जाती थी। बलवानों के अत्याचार को रोकने के लिए कोई कानूनी उपाय न था। निर्बलों का एक मात्र उपाय था मिन्नत आर्ज़ू, खुशामद और रिशवत, ये उपाय भी काम न दें तो देश छोड़ कर भाग जाने के सिवा कोई रास्ता न था। देव चरित्र की कल्पना में जो बात थी वही समाज और राष्ट्रीय तन्त्र में भी थी।

उपनिषद् का वाक्य है—यथातथ्य तोर्थान व्यादधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः। इसका मतलब यह है कि विधाता का विधान यथातथ्य है, उसमें कोई गड़बड़ नहीं और वह शाश्वत काल के लिए है, वह सदा एकसा रहता है,

और उसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता हम लोगों को चाहिए कि हम लोग उस नित्य विधान को ज्ञान के द्वारा समझें और कर्म के द्वारा उसे अपनालें। इस नित्य विधान को हम जितना ही अधिक अपनालेंगे उतना ही विघ्नबाधाओं को दूर करने में समर्थ हो सकेंगे। कारण यह कि जिस विधान में नित्यता है वह कही एक जगह एक दम से नहीं ठहर सकता, वह बाधाओं को अवश्य पार करेगा। इस नित्य और यथातथ विधान को यथातथ रूप से जाननाही विज्ञान है। इसी विज्ञान के बल पर यूरोपवाले कहते हैं मलेरिया को मार भगावेंगे, किसी रोग को टिकने न देंगे अन्नके अभाव को संसार से मिटादेंगे, ज्ञान की ज्योति, से घर घर प्रकाशित कर देंगे, मनुष्य मात्र सुस्थ सबल हो जायंगे और राष्ट्रीय मामलों में व्यक्ति स्वातन्त्र्य के साथ साथ विश्वकल्याण का सामञ्जस्य पूर्ण हो जायगा।

आध्यात्मिक अर्थ में भारतवर्ष ने एक दिन कहा था कि अविद्या ही बन्धन है और ज्ञान से ही मुक्ति होती है। सत्य को प्राप्त करने ही से हमारा परित्राण हो सकता है। पर असत्य क्या है? अपने को सब से अलग समझना ही असत्य है। सर्वभूतों के साथ आत्मा का मेल जानकर परमात्मा के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध को समझ लेना ही सत्य ज्ञान है। वास्तव में इस महान सत्य को हृदयङ्गम कर लेना एक परमाश्चर्य जनक व्यापार है, यह बात हम आज अच्छी तरह नहीं समझ सकते।

इधर आधिभौतिक क्षेत्र में यूरोप जिस मुक्ति की साधना कर रहा है उसका भी मूल सिद्धान्त वही है।

वहां भी अविद्या बन्धन है और सत्य की प्राप्ति ही मुक्ति है यही वैज्ञानिक सत्य मनुष्य के मन को विछिन्नता से हटाकर विश्व व्यापकता की ओर ले जाता है और वहां मनुष्य की विशेष शक्ति को विश्वशक्ति के साथ जोड़ देता है।

भारतवर्ष में ऋषियों का युग चला गया और बौद्ध युग ने धीरे धीरे अपने कदम जमाये। भारतवासियों ने जिस महान सत्य को प्राप्त किया था उसे अपने व्यवहारिक जीवन से अलग कर दिया। लोग समझने लगे कि संन्यासी होने पर ही मुक्ति की साधना हो सकती है। इसका फल यह हुआ कि देश में विद्या के साथ अविद्या का मेल जोल हो गया। दोनों ही के लिए स्थान नियत हो गया। इसी लिए सांसारिक धर्म, कर्म, आचार, विचारों में सङ्कीर्णता, स्थूलता और मूढ़ता छा जाने पर भी उच्चतम सत्य की ओर से उसका प्रतिवाद नहीं होता; यही नहीं उलटे उसका समर्थन किया जाता है। वृक्ष के नीचे बैठा हुआ ज्ञानी कहता है—"जिस मनुष्य ने अपने को सर्वभूतों के बीच में और सर्वभूतों को अपने बीच में अनुभव करलिया है उसने सत्य को प्राप्त कर लिया है।" यह सुनतेही संसारिक भक्ति में चूर हो जाता है और तुरन्त ही उस महात्माकी भिक्षा की झोली भर देता है। परन्तु अपने घर में बैठकर वही संसारी कहता है-"जो लोग सर्वभूतों को दूर दूर रखना नहीं चाहते अर्थात् जो एकात्मयी करना चाहते हैं, वे भ्रष्ट है, उनका हुक्का पानी एकदम बन्द कर देना चाहिए"। इसी लिए इस देश में विछिन्नता दिन पर दिन बढ़रही है; उसे रोकने वाला कोई नहीं। इसी के फल-स्वरूप हम आज

सैकड़ों वर्षों से घर बाहर सभी जगह अपमानित, लाञ्छित और पराजित हो रहे हैं।

यूरोप की दशा यहां से विपरीत है। वहां सत्यसाधना का क्षेत्र केवल ज्ञान नहीं किन्तु व्यवहार भी है। यूरोप वाले राजनैतिक, सामाजिक सभी मामलों में जो दोष पाते हैं सब मिलकर इसी सत्य के प्रकाश में उस पर बिचार करते हैं और इसी सत्य की सहायता से उसका संशोधन करते है। इसी कारण से यह सत्य जो शक्ति और जो मुक्ति देता है उस पर सब मनुष्यों का अधिकार होता है, वह सब को आशा देता है और साहस प्रदान करता है। उसका विकाश तन्त्र मन्त्र के कुहरे से ढका नही रहता। वह खुले प्रकाश में सब के सामने बढ़ता है और सब को बढ़ाता है।

हम लोग सैकड़ों वर्षों से कर्म-संसार में जो अपमान सह रहे हैं वह राष्ट्रीय पराधीनता के आकार में खूब साफ साफ दिखाई दे रहा है। बात यह है कि जहां पर व्यथा होती है वहीं पर हाथ जाता है। यही कारण है कि जिस यूरोपियन जाति ने प्रभुत्व पाया उस की राष्ट्र व्यवस्था की ओर ही हमारा ध्यान गया। हम सब बातें भूलकर केवल यही कहते है कि भारत के शासनतन्त्र के साथ हमारी इच्छा का संयोग हो; ऐसा न हो कि ऊपर वाले जो चाहें नियम बनावे और हम लोग अपनी इच्छा के विरुद्ध उनको मानें। कर्त्तृत्व को कन्धे पर लादना असह्य मालूम होता है; उसे ऐसी पहियेदार गाड़ी में लादना चाहिए जिसे हम भी अपने हाथ से खींच सकें।

आजकल संसार के सभी देशों में यह आवाज़ उठ रही

है कि बाहरी कर्त्ताओं के एकतर्फा शासन से मनुष्य को छुटकारा मिलना चाहिए। काल के धर्म से हमने भी अपनी आवाज़ इस आवाज़ में मिलादी है। हमलोग यदि ऐसा न करते और राष्ट्रीय व्यापार में अपने को 'कर्त्ता भक्त' प्रकट करते तो हमारे लिए यह बड़ी लज्जा की बात होती। अन्ततः एक ही द्वार से सत्य हमको दिखाई दिया, यह शुभ लक्षण है।

सत्य हमको दिखलाई पड़ा; इसी से आज हम ज़ोर देकर कहते हैं कि देश का जो आत्माभिमान हमारी शक्ति को आगे की ओर बढ़ाता है उसे तो हम साधुवाद करते हैं; परन्तु जो आत्माभिमान हमें पीछे खींचकर अचल खूंटे में बंधा रखना चाहता है उसे धिक्कारे बिना नहीं रह सकते। इसी आत्माभिमान में बाहर की ओर मुंह करके हम कहते हैं कि राष्ट्र तन्त्र की कर्त्तृत्व सभा में हमें आसन मिलना चाहिये; पर उसी अभिमान में घर की ओर मुंह फेर कर कहते हैं कि—"खबरदार, धर्मतन्त्र, समाजतन्त्र, यहां तक कि व्यक्तिगत व्यवहार में भी कर्ता की आज्ञा बिना एक कदम भी न चलना" इसी का नाम है हिन्दूधर्म का पुनरुद्धार। देशाभिमान की आज्ञा है कि हमारी एक आंख सोवे और एक जागे। ऐसे हुक्म की तामील करना बड़ी कठिन बात है।

विधाता के दण्डविधान के अनुसार जब हमारी पीठों पर बेंत पड़ने लगे तब देशाभिमान छटपटा कर चिल्ला उठा "इस बेंतबन को जड़ से उखाड़ कर फेंक दो" परन्तु यह याद रखना चाहिए कि बेंतबन के न रहने पर भी बांसों

का बन बना रहेगा। असल मे अपराध न बेंत का है न बांस का। अपराध यदि किसी का है तो वह हमारा ही है और वह यह है कि 'सत्य' के स्थान पर हम 'कर्ता' को मानते हैं। जब तक यह बात बनी रहेगी तब तक कहीं न कहीं बेंतवन हमारे लिए अवश्य अमर रहेगा।

किसी समय यूरोप में भी धर्मतन्त्र का शासन समाज के सभी विभागों में प्रबल था। जिस दिन से इस शासन की प्रबलता कम हुई उसी दिन से यूरोप वाले आत्मकर्तृत्व के मैदान में जल्दी २ कदम बढ़ाने लगे। अंगरेजों के लिए यह बड़ी अच्छी बात थी कि उनका देश इंगलैंड एक टापू था। क्योंकि यूरोपियन धर्मतन्त्र की प्रधान गद्दी रोम में थी। और रोम के पूर्ण प्रभाव को अस्वीकार करना विच्छिन्न इंगलैंड के लिए कठिन न था। इसका यह मतलब नहीं कि इंगलैंड में धर्मतन्त्र का प्रभाव बिलकुल ही नहीं पड़ा। यह कोई कह सकता कि उसके चिन्ह आज भी वहां मौजूद नहीं। परन्तु बात यह है कि बड़े घरों में गृहिणी के बिधवा होने पर जो दशा होती है इंगलैंड में धर्मतन्त्र की भी वही अवस्था है। किसी समय जिन पर वह शासन करती थी उन्हीं को प्रसन्न रखने के लिए आज वह चेष्टा करती है। उसका पुराना रोबदाब नष्ट हो गया है; लड़के बाले उसको सातवें दिन प्रणाम कर लेना काफी समझते हैं। इससे अधिक उसका प्रभाव अब बाकी नहीं रहा।

इंगलैंड में इस बुढ़िया का शासन बहुत दिन हुए समाप्त हो चुका; परंतु स्पेन में वह अब भी बना हुआ है। किसी समय स्पेन खूब उन्नत अवस्था को प्राप्त हो गया

था। संसार के कितने ही स्थानों में उसकी विजय पाताका फहराती थी। परंतु स्पेन की आज वह दशा नहीं। उन्नति के मैदान में आज वह सब से पीछे पड़ा हुआ है। इसका कारण क्या है ?

इसका कारण यह है कि वही बुढ़िया उसके कंधे पर सदा चढ़ी रहती है। वह उसे उन्नति की दौड़ में जल्दी जल्दी आगे क़दम बढ़ाने से रोकती है। यह बात उसी दिन प्रकट होगई थी जिस दिन इंगलैंड और स्पेन के बीच नौयुद्ध हुआ था। लोगों ने समझ लिया था कि स्पेन का जैसा धर्म विश्वास है वैसी ही सनातन प्रथा में बंधी हुई उसकी नौयुद्ध विद्या भी है। अंग्रेज़ों के युद्ध जहाज़ चञ्चल जलवायु के नियमों के अनुसार चलते थे; परन्तु स्पेनिश लोगों के जंगी जहाज़ अपने अचल बंधे हुए नियमों को छोड़कर एक कदम भी न चल सकते थे। जो खूब अनुभवी और दक्ष होता था वह कुलीन न होने पर भी अंगरेज़ी जहाज़ों का सेनापति हो सकता था; परन्तु स्पेन के रणपोतों का अधिपति कुलीनों के सिवा और कोई न हो सकता था।

आज यूरोप के जिन जिन देशों ने उन्नति की है उन सभों में धर्मतंत्र का अन्धकर्त्तृत्व दूर हो चुका है और मनुष्यों ने अपने आपको श्रद्धा करना सीखा है। जिस देश के मनुष्यों में श्रद्धा का यह भाव नहीं—जैसे रूस वहां का समाज लावारिसी खेत की तरह नाना प्रकार के कर्त्ताओं द्वारा कटीली झाड़ियों से भरा हुआ जंगल बन गया है। वहां वर्त्तमान काल के चपरासी से लेकर

प्राचीन काल की पोथी तक सभी मनुष्यत्व के कान मल कर अन्यायपूर्ण 'कर' वसूल करते हैं।

यह याद रखना चाहिए कि धर्म और धर्मतन्त्र एक चीज़ नहीं, उन में जमीन आसमान का फ़रक है। जिस समय धर्म को धर्मतन्त्र दबा लेता है उस समय नदी में रेती सी पड़ जाती है और धारा का बहना बंद हो जाता है। जलधारा की उस अचलता को देखकर जब लोग गर्व करने लगते हैं तब मानो कोढ़ में खाज हो गई।

धर्म कहता है कि मनुष्य की श्रद्धा करो, यदि ऐसा न करोगे तो अपमानित और अपमानकारी दोनों का कल्याण न होगा। पर धर्मतंत्र कहता है कि मनुष्य को निर्दयता पूर्वक अश्रद्धा करने की विस्तृत नियमावली यदि पूरी पूरी न मानोगे तो धर्मभ्रष्ट हो जाओगे। धर्म कहता है कि जीव को जो निरर्थक कष्ट देता है वह अपनी ही आत्मा का हनन करता है। परंतु धर्मतंत्र कहता है कि चाहे जितना ही असह्य कष्ट क्यों न हो विधवा कन्या को जो माता पिता विशेष तिथि को अन्नजल प्रदान करता है वह पापी है। धर्म कहता है कि पश्चात्ताप और शुभ कर्मों ही के द्वारा अपने पापों का संशोधन होता है। पर धर्मतंत्र कहता है कि ग्रहण के दिन विशेष जल में स्नान करने से केवल अपने ही नहीं चौदह पीढ़ियों के पाप छुट जाते हैं। धर्म कहता है कि समुद्र और पहाड़ों को पार करके संसार में विचरण करो, क्योंकि मन के विकास का यही उपाय है। परंतु धर्मतंत्र कहता है कि समुद्र पार करते ही धर्म और जाति दोनों ही बीच समुद्र में डूब

जायँगे। धर्म कहता है कि मनुष्य यथार्थ में मनुष्य ही है, वह चाहे जहां उत्पन्न हो पूजनीय है। परंतु धर्मतंत्र कहता है कि जिस मनुष्य ने ब्राह्मण के घर में जन्म लिया हो वह घोर पापी होने पर भी बन्दनीय है और जो शूद्र के घर पैदा हुआ है वह महान धर्मात्मा होने पर भी तिरस्करणीय है। मतलब यह कि धर्म-मुक्ति का मन्त्र पढ़ता है और धर्मतंत्र दासत्व का।

हमारे परिचित एक राजा साहब एक दिन एक दूसरे राजा से कलकत्ते में मिलने गये थे। कलकत्ते वाले राजा साहब ग्रेजुयेट हैं। दोनों में बड़ी देर तक बातें होने के बाद जब अतिथि महाशय उठकर चले और गाड़ी में चढ़ने लगे तब ग्रेजुयेट राजा साहब अपने अतिथि का कपड़ा खींच कर जल्दी से बोले—"अरे! आप के मुंह में पान है"। यह सुनते ही उन्होंने चटपट पान थूक दिया, क्योंकि गाड़ी हांकनेवाला मुसलमान था। अब यह कौन पूछे कि "गाड़ी वाला चाहे कोई हो; मुंह का पान थूकने को क्या ज़रूरत?" धर्म बुद्धि या कर्म बुद्धि में रत्ती भर बाधा न पड़ने पर भी गाड़ी में बैठ कर स्वच्छन्दता पूर्वक पान खाने की स्वाधीनता जिस देश के मनुष्य सहज ही में छीन सकते हैं। समझ लेना चाहिए कि उस देश के मनुष्य स्वाधीनता का अन्त्येष्टि संस्कार कर चुके हैं।

निद्रा में एक प्रकार की शोभा है। कोई कोई विदेशी इस देश में आकर इस शोभा की व्याख्या करते हैं। इस शोभा को वे उसी दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से एक चित्रकार पुराने खंडहरों की चित्रयोग्यता को देखता है।

उसे इस बात से कोई मतलब नहीं कि ये खंडहर रहने योग्य भी है या नहीं। कुम्भ आदि पर्वों के समय रेलों पर यात्रियों की भीड़ देखो। ऐसे अवसर पर स्त्रियों ही की संख्या अधिक होती है। उनके अपमान और कष्टों का ठिकाना नहीं होता, परन्तु वे सब सहती हैं और चूं तक नहीं करतीं। बाहर से देखने पर इस व्याकुल सहिष्णुता में सौन्दर्य मालूम होता है। परन्तु हमारे देश के अन्तर्यामी भगवान् इस अन्ध निष्ठा के सौन्दर्य को ग्रहण नहीं करते। वे इसके बदले में पुरस्कार नहीं देते, दण्ड ही देते हैं। दुःख दिन पर दिन बढ़ता जाता है। कारण यह कि इन निष्ठावती स्त्रियों के सैकड़ों देवी देवता मनाने पर जो लड़के होते हैं वे गंडे तावीज़ और झाड़ फूक के बीच में पल कर जब सयाने होते हैं तब इस लोक और परलोक की सभी वस्तुओं के सामने अपना सिर झुकाने को सदा तैयार रहते हैं। इनकी उन्नति के रास्ते में जो बातें बाधक होती हैं उन्हें वे अकाश तक उठाने में ही अपनी उन्नति समझते हैं। सत्य के लिए मनुष्य कष्ट सहे यह बड़ी अच्छी बात है। परन्तु अन्धबुद्धि और अन्याय शक्ति के हाथों मनुष्य यदि तनिक भी कष्ट सहे तो यह बहुत बेजा है। कारण यह कि विधाता ने हमें जो सब से बड़ी सम्पत्ति अर्थात् त्याग स्वीकार की बीरता—दी है उसकी यह बे हिसाब फजूल खर्ची है।

आंख की देखी बात है कि जिस रास्ते से हज़ारों स्त्री पुरुष पुण्य लूटने के लिए तीर्थ स्नान को जा रहे थे उसी के किनारे एक परदेशी रोगी ज़मीन पर पड़ा था। ठीक ठीक सेवा सुश्रूषा और दवा दारू न होने तथा भूख प्यास और जाड़े

पाले से छटपटा छटपटा कर वह मर गया। परन्तु जाति के न जानने के कारण उसे किसी ने न छुआ इन कष्ट सहिष्णु पुरुष का भी यात्रियों की निष्टा प्रकट में बड़ी अच्छी मालूम होती है ; पर वास्तव में उस में मनुष्यत्व का लेश नहीं; वह सर्व नाश की जड़ है। जो अन्धता मनुष्य को पुण्य के लिए जल में स्नान करने को वाध्य करती है वही अन्धता उसे एक अपरिचित मुमूर्षु की सेवा करने से निरस्त करती है। इस मूढ़ निष्ठा से कोई लाभ नहीं। विधाता को यह किसी प्रकार प्रिय नहीं हो सकती। क्योंकि यह उसके दान की अव मानना है। गयातीर्थ में देखा जाता है कि धनी पुरुष और स्त्रियां उन पण्डों को हज़ारों रुपये दे डालते हैं जिन के लिए काला अक्षर भैंस बराबर होता है और जिनका अधिकांश धन द्यूत क्रीड़ा और वेश्यागमन में ख़र्च होता है। भक्त लोग इन पण्डों की पूजा जिस समय करते हैं उस समय उनकी भक्ति विह्वलता भावुक के नेत्रों में चाहे बड़ी ही सुन्दर मालूम हो, परन्तु क्या सत्य दया की ओर वह उन को एक क़दम भी आगे बढ़ाती है?

लोग कह सकते हैं कि जो यात्री पण्डों को दान करते हैं वे उन्हें पवित्र ही मानते हैं; इसी से तो वे उन्हें हज़ारों रुपये दे डालते हैं, नहीं तो उन्हीं रुपयों को अपने काम में वे क्यों न लाते। परन्तु असल बात यह है कि ऐसी दशा में उन्हें एक बड़ा भारी लाभ होता। वह यह कि अपने काम में रुपये ख़र्च करने को वे धर्म न समझते और इस तरह अपने आप खुद धोखा देने से बचे रहते। मोह की इस दासता से उनका मन मुक्त रहता। मन की इस मुक्ति के

अभाव के कारण ही देश की शक्ति प्रकट नहीं हो पाती। बात यह है कि जिस को आंखें बन्द करके चलने का अभ्यास होता है— आंखें खोल कर चलने पर उस के पैर कांपने लगते हैं आज्ञाकारी दास की तरह जिसने केवल पीछे चलने ही के लिए प्राण देना सीखा है, अपना प्रभु आप बन कर स्वेच्छा से न्याय धर्म के लिए प्राण देना उसके लिए अत्यन्त कठिन है।

इसी लिए हमारे गांवों में अन्न, जल, स्वास्थ्य, शिक्षा, आनन्द सभी का अकाल पड़ रहा है। आत्मशक्ति के जाग्रत किये बिना गांव वालों का उद्धार नहीं हो सकता। यह विचार कर हमने एक गांव में खुद ही अपना कल्याण करने की शक्ति को जगाने की चेष्टा की। एक दिन गांव में आग लगी। वहां आस पास पानी कहीं न था, जिस से वे गांव वाले आग बुझाते। वे लोग रोने चिल्लाने लगे। परन्तु कर ही क्या सकते थे। यह देख कर हमने उन से कहा—" यदि तुम लोग मेहनत करके एक कुवां यहां खोदो तो हम उसे अपने खर्च से बँधवा देंगे।" परन्तु इस बात पर वे लोग राज़ी न हुए। उन्होंने सोचा कि यह शख्स बड़ा चालाक है; कुवां अपने खर्च से बँधवा कर स्वयं ही पुण्य लूटना चाहता है, इस लिए हम लोग नाहक़ में क्यों मेहनत करें। फल यह हुआ कि कुआं न खुदा और जल का कष्ट बना ही रहा तथा आग का लगना भी वहां बन्द न हुआ।

इस अटल दुर्दशा का मुख्य कारण यह है कि गांव वाले सब काम पुण्य के लोभ से करते हैं। पुण्य का प्रलोभन यदि इन्हें न हो तो वे लोग भूखों प्यासों मर जाने पर भी हाथ

पर हाथ धरे बैठे रहें। इस का कारण यह है कि 'उस बुढ़िया' की गोद से ये लोग अभी नहीं उतरे। जो कुछ काम ये करते हैं सब बुढ़िया की आशा से। हम इन्हीं को दोष कैसे दे, जब कि 'बुढ़िया' ने इन के मनों को अफीम खिला कर सुला दिया है, परन्तु उस समय हम आश्चर्य में डूब जाते हैं जिस समय यह देखते हैं कि आज कल के शिक्षित युवक यहां तक कि कालेज के तरुण छात्र भी, 'बुढ़िया तन्त्र' के गुण गाते हैं। भारतवर्ष को सनातन धात्री की गोद में चढ़ते देख कर ये लोग बहुत प्रसन्न होते हैं और गर्व करते हैं। कहते हैं कि वह बड़ा ऊंचा आसन है; वहां से क़दम ज़मीन पर नहीं पड़ सकता। उन का यह भी ख़याल है कि उस गोद में चढ़े रह कर ही आत्मकर्तृत्व का राजदण्ड हाथ में लेने में बड़ी भारी शोभा है।

परन्तु तब भी देखते हैं कि दुःख पर दुःख और दुर्भिक्ष पर दुर्भिक्ष पड़ रहे हैं। यम लोक के जितने चर हैं सभी ने हमारे घरों में डेरा डाल रक्खा है। बाघ सिंह आदि हिंसक जन्तुओं और डाकुओं को मार भगाने तक के लिए भी जिस तरह हमारे पास हथियार नहीं उसी तरह इन अमंगल, अशुभ और हानिकारक विश्वासों, विचारों और रीतियों को दूर करने के लिए भी हमारे पास सामाजिक अस्त्र नहीं। "इन को दूर करने का अस्त्र है, ज्ञान का अस्त्र, विचार बुद्धि का अस्त्र।" बुढ़िया के शासन के भक्तों का कथन है कि "यह अस्त्र क्या हमारे पास नहीं है? हम भी साइंस पढ़ कर उस का उपयोग कर सकते हैं।" यह नहीं कहा जा सकता कि अस्त्र बिलकुल ही नहीं है; परन्तु अस्त्र व्यवहार करने

का क़ानून बहुत कड़ा है। इस बात पर बहुत ज़ोर दिया जाता है कि जहां तक हो सके इस अस्त्र का व्यवहार न किया जाय। जो लोग इस नियम को नहीं मानते उन्हें बुरी तरह दण्ड दिया जाता है।

"भगवान् करे पैर में बेड़ियां बनी रहें।" जहां यह आशीर्वाद दिया जाता है वहां के दयालु लोग यह भी कह सकते हैं—"मनुष्यों के कन्धे पर चढ़ कर चलने के लिए प्रस्तुत हो जाओ।" जाति पांति और आचार विचार के बेड़े को मरम्मत करके पक्का करने ही का नाम यदि पुनरुज्जीवन हो और इस तरह जीवन के क्षेत्र को बाधाग्रस्त तथा बुद्धि के क्षेत्र को सङ्कीर्ण करना ही यदि हमारे लिए गौरव की बात हो तो यह बहुत ज़रूरी बात है कि इन अपाहिजों के लालन पालन के लिए उचित प्रबन्ध किया जाय। परन्तु यह कैसे हो। तृषार्त के पानी के घड़े को तोड़ फोड़ कर चलनी में पानी लाने के लिए घोर आन्दोलन करना विधाता को भी सह्य नहीं हो सकता।

बहुत से लोगों का यह कथन है कि हमारे देश में पग पग पर जो दुःख दारिद्र्य देखा जाता है उस का मूल कारण है विदेशियों का शासन। इस बात पर विचार करने की ज़रूरत है।

अंगरेज़ी राष्ट्रनीति का मूल तत्त्व यह है कि राष्ट्रतन्त्र के साथ प्रजा की शक्ति का संयोग हो। यह बात हम लोगों से छिपी नहीं कि यह राष्ट्रतन्त्र एक तरफा आधिपत्य का शत्रु है। यही बात हम लोगों ने सरकारी विद्यालयों में बैठ सीखी है। किसी की हज़ार चेष्टा करने पर भी अब हम यह बात नहीं भुला सकते।

चाहे कांग्रेस हो या लीग सभी का यही मूल मन्त्र है। जिस प्रकार यूरोप के विज्ञान पर हम लोगों का स्वाभाविक अधिकार है उसी प्रकार अंगरेज़ी राष्ट्रतन्त्र पर भी भारत की प्रजा का पूर्ण अधिकार है। कोई एक दो या अधिक से अधिक हज़ार पांच सौ अंगरेज़ कह सकते हैं कि भारतीय छात्रों को विज्ञान न सीखने देना चाहिए। परन्तु विज्ञान उन हज़ार पांच सौ अंगरेज़ों के कण्ठस्वर को दबा कर वज्र स्वर से बोल उठेगा —" तुम लोग चाहे जिस रंग के हो और चाहे जिस देश में रहते हो, आओ और हमें ग्रहण कर के शक्ति लाभ करो।" इसी तरह दस बीस अथवा दस बीस हज़ार अंगरेज़ राज-मंच या समाचार पत्रों के स्तम्भ पर चढ़ कर कह सकते हैं कि भारत-शासन-तन्त्र में भारतीय-प्रजा न घुसने पावे। परन्तु उन दस हज़ार अंगरेज़ों की बात को तिरस्कार करके अंगरेज़ी राष्ट्रनीति वज्र स्वर से बोल उठेगी— "तुम लोग चाहे जिस रंग के हो और तुम्हारा देश चाहे कोई हो, यदि तुम भारतीय प्रजा हो तो भारत-शासन-तन्त्र पर तुम्हारा अधिकार है; तुम उसे ग्रहण करो।"

परन्तु कोई कोई लोग यह कह बठते हैं कि अंगरेज़ी राष्ट्र नीति हम लोगों के लिए उपयुक्त नहीं। यह भी वैसी ही बात है जैसे ब्राह्मणों का यह कहना कि उच्च श्रेणी के धर्म कर्म और ज्ञान पर शूद्रों का अधिकार नहीं परन्तु ब्राह्मणों ने अधिकार भेद की इस व्यवस्था को बहुत मज़बूती से बांधा है; जिन के शरीर को पंगु करना मंज़ूर था उनके मनों को भी पंगु कर डाला है। ज्ञान की जड़ कटते ही कर्म की डालियां आप ही आप सूख जाती हैं। शूद्रों के ज्ञान

की जड़ कटते ही उद्देश्य सिद्ध हो गया ; और कुछ करने की आवश्यकता न रही। फिर क्या था उनका माथा चट से झुक गया और ब्राह्मणों के चरणों पर आ गिरा खुशी की बात है कि अंगरेज़ों ने हमारे ज्ञान के द्वार को बन्द नहीं किया और यही हमारी मुक्ति का सिंह-द्वार है। हम समझते हैं कि राजपुरुष इस बात पर कभी कभी पछताते भी हैं कि उन्होंने इस द्वार को पहले ही क्यों न बन्द कर दिया। यही कारण है कि अब वे धीरे धीरे विद्या मन्दिर की खिड़कियां और छोटे छोटे दरवाज़े एक एक करके बन्द करते जाते हैं। परन्तु यह बात उन्हें याद रखना चाहिए कि जो मनुष्य अपनी सुविधा और स्वार्थ के लिए मनुष्यत्व को आघात पहुंचाता है वह कभी कभी आत्महत्या भी कर बैठता है।

भारत के शासन में हमारा न्याय अधिकार अंगरेज़ों के मनस्तत्व ही में निहित है, यह बात यदि हम लोगों की समझ में आजाय तो इसके लिए दुःख सहना और त्याग करना हमारे लिए सहज हो जाय। परन्तु यदि हम लोग अपने दुर्बल अभ्यास के अनुसार यह मानलेंगे कि जो कुछ कर्त्ता को मंजूर होगा वही होगा तो इस में संन्देह नहीं कि हमें घोर निराशा घेर लेगी और इसका फल यह होगा कि या तो हम लोग चुप चाप चक्रान्त रच कर एकदम उपद्रव कर बैठेंगे या घर के कोने में बैठ कर आपस में एक दूसरे से कहेंगे कि अमुक लाट साहब बड़े अच्छे हैं या बड़े ख़राब हैं अथवा अमुक व्यक्ति मन्त्री होगा तो हमारा कल्याण नहीं या मार्ली साहब के भारत सचिव होते ही हमारा भाग्य चमक उठेगा, इत्यादि। मतलब यह कि नैराश्य या तो हम

को पागल बनाकर हमारी शक्तियों को कुमार्ग में लगा देगा या घोंघावसन्त बनाकर हमारी शक्तियों को नष्ट कर देगा।

परन्तु मनुष्यत्व पर हमारा अविश्वास नहीं। यह हम मानते हैं कि अंगरेज़ों की राष्ट्रनीति में शक्ति ही सब कुछ नहीं, नीति भी कुछ है। नहीं, नहीं, नीति शक्ति से कहीं बढ़ कर है। यद्यपि प्रति दिन इसका विरोध देखने में आता है; देखते हैं कि स्वार्थपरता, क्षमता प्रियता, लोभ, क्रोध, भय, और अहंकार सभी की लीला चल रही है तथापि इस में सन्देह नहीं कि मनुष्य के ये शत्रु वहीं पर हम को मारते हैं जहां हमारे भीतर भी शत्रु हैं जहां पर हम भी क्षुद्र भय से भीत हो जाते हैं, क्षुद्र लोभ से लुब्ध हो जाते हैं और परस्पर एक दूसरे से ईर्ष्या द्वेष और अविश्वास रखते हैं। परन्तु जहां पर हम बड़े हैं। बीर हैं, त्यागी तपस्वी और श्रद्धावान हैं वहां पर अन्य पक्ष वालों के भी इन्हीं गुणों से हमारा योग हो जाता है। वहां पर अन्य पक्ष वालों के शत्रुओं के आक्रमण करने पर भी हम विजयी हो जाते हैं। यदि हम डरपोक और क्षुद्र बने रहेंगे तो अंगरेज़ी गवर्नमेंट के शत्रुओं ही को प्रबल करेंगे। जहां पर दो पक्षों को लेकर कार बार चल रहा हो वहां पर दोनों पक्ष वालों की शक्ति के योग से ही शक्ति का उत्कर्ष हो सकता है और दोनों पक्ष की दुर्बलता के योग से दुर्बलता ही बढ़ेगी। अब्राह्मण ने हाथ जोड़ कर अपनी अधिकार हीनता जिस समय मानली उसी समय मानो ब्राह्मणों के अधःपतन का गहरा गढ़ा खुद गया। बलवान दुर्बलों के लिए जैसा बड़ा शत्रु है, दुर्बल भी बलवानों के लिए उस से कम बड़ा शत्रु नहीं।

एक उच्चपदस्थ राज-पुरुष ने एक दफ़े हमसे कहा था—"तुम लोग अकसर कहा करते हो कि पुलिस तुम पर अत्याचार करती है ; यह बात हम भी मानते हैं। परन्तु तुम लोग तो इसका कोई प्रमाण देते नहीं।" इसका यह मतलब नहीं कि पुलिस के संग लाठी चलाई जाय। बात यह है कि अन्याय के साथ युद्ध हाथ पैर के ज़ोर से नहीं होता ; किन्तु तेज़ के ज़ोर से होता है और वह तेज़ कर्त्तव्यबुद्धि से प्राप्त होता है। देश को निरन्तर अत्याचार से बचाने के लिए कुछ ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो इसके लिए अपनी छाती रोप दें और जी जान लड़ाकर अन्याय को सब पर प्रकट कर दें। यह हम जानते हैं कि पुलिस का एक चौकीदार भी कोई साधारण मनुष्य नहीं; वह एक प्रकार की शक्ति है। पुलिस के एक मामूली प्यादे को बचाने के लिए मुक़द्दमे में गवर्नमेंट हज़ारों रुपये ख़र्च कर देती है। मतलब यह कि पुलिस का आदमी तो अदालत महा समुद्र को सरकारी स्टीमर की सहायता से चट पट पार कर जाता है; परन्तु वेचारे फरियादी को यह महा भयङ्कर समुद्र तैर कर पार करना पड़ता है; उसकी सहायता के लिए कोई पास तक नहीं आता। यह बात मानो स्पष्ट रूप से यह कह रही है कि जब मार ही खाना है तब चुप चाप सब सह लेना चाहिए; इसी में भलाई है। इसके सिवा और कर ही क्या सकते हैं? प्रेस्टेज! उस से तो हमारी बहुत दिनों की जान पहचान है। यही तो 'कर्त्ता' है, यही तो कवि कङ्कण की चण्डी है। न्याय, धर्म आदि सब देवताओं को छोड़ कर अब इसी की पूजा करना चाहिए; नहीं तो हड्डी हड्डी चूर करदी जायगी। अतएव—

या देवी राज्यशासने प्रेस्टिजरूपेण संस्थिता॥
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥

परन्तु सच पूछो तो यही अविद्या है और इसी का नाम माया है। जो स्थूल नेत्रों से दिखाई देता है वही क्या सत्य है? नहीं कभी नहीं, असल बात यह है कि हम लोगों के बिना गवर्नमेन्ट चल ही नहीं सकती। यह सत्य समस्त राजपुरुषों से भी बड़ा है। इसी सत्य की बदौलत अंगरेज़ बली हैं, और हम लोग भी उस बल से बलवान हैं। यदि इस सत्य का बल हम में न रहे तो अंगरेज़ भी उस से शीघ्र ही हाथ धो बैठें। यदि हम लोग भीरु हो जायँ, अंगरेज़ी राष्ट्रतन्त्र के नीति तत्त्व में यदि हमारी श्रद्धा न रहे तो पुलिस अवश्य ही अत्याचार करेगी; मजिस्ट्रटों के लिए सुविचार कठिन हो जायगा; प्रेस्टिज देवी नर-बलि अवश्य मांगेगी और अंगरेज़ी शासन अंगरेज़ों के चिरकालीन ऐतिहासिक धर्म के विरुद्ध ज़रूर हो जावेगा।

इस के उत्तर में कोई कोई लोग कह उठेंगे कि "राष्ट्रतन्त्र में शक्ति से नीति बड़ी है यह बात पारमार्थिक भाव से मानी जा सकती है परन्तु व्यावहारिक भाव से इसे मानने में विपद् का सामना करना पड़ेगा; इस लिये या तो चुप चाप गरम पंथ का अवलंबन करना चाहिये या प्रेस ऐक्ट की धारदार तलवार के नीचे नरम पन्थ का"।

"हां इस में शक नहीं कि विपद् का सामना अवश्य करना पड़ेगा; परन्तु ज्ञान में जो सत्य है व्यवहार में भी उसे सत्य सिद्ध करना चाहिए"।

"किन्तु हमारे देश ही के लोग भय और लोभ से न्याय के पक्ष में साक्षी न देंगे।"

"यह भी ठीक है। तब भी सत्य को मान कर चलना पड़ेगा।"

"परन्तु हमारे ही देश के आदमी प्रशंसा और पुरस्कार के लोभ से हम पर आक्रमण करेंगे।"

"यह भी ठीक। तब भी सत्य को मानना होगा।"

"क्या इतनी आशा करनी चाहिए ?"

"हां इतनी आशा करना ही पड़ेगी; ज़रा भी कम नहीं गवर्नमेन्ट से बहुत कुछ अपने मतालबे का दावा करना पड़ेगा। परन्तु उस से भी बढ़ कर अपने से मतालबे का दावा करना होगा नहीं तो वह दावा चल न सकेगा। यह हम मानते हैं कि सब मनुष्य बलवान नहीं होते, दुर्बल भी होते हैं। परन्तु संसार के सभी देशों में ऐसे बहुत से मनुष्य जन्म लेते हैं जो सब मनुष्यों के प्रति निधि होते हैं; जो सब के दुःखों को अपने सिर पर ले लेते हैं और दूसरों के रास्ते को स्वयं चल कर काट देते हैं, जो विरोध किये जाने पर भी मनुष्यत्व पर विश्वास रखते हैं और व्यर्थता के गहरे अन्धकार के पूर्व प्रान्त में सूर्योदय होने की प्रतीक्षा में जागते रहते है। वे लोग अविश्वासियों के हँसी उड़ाने की परवा न करके ज़ोर के साथ कहते हैं—"स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।" अर्थात् केन्द्रस्थल में यदि तनिक भी धर्म हो तो चारों ओर के बड़े से भी बड़े भयों से डरने की आवश्यकता नहीं। राष्ट्रतत्त्व में नीति के ही उपासक

बनना चाहिए, भीति के नहीं। धर्म है, इस लिए मरते दम तक उसी को मानना चाहिए।

मानलो कि लड़का बहुत बीमार है। उस के लिए खास अंगरेज़ सिविल सर्जन बुलाया गया है। ख़र्च भी बहुत करना पड़ा है। यदि यह देखा जाय कि डाकृर साहब दवा देने के बजाय ओझों की तरह मन्त्र पढ़ कर झाड़ फूंक कर रहे हैं और रोगी कष्ट से चिल्ला रहा है तो डाकृर से यह अवश्य कहना पड़ेगा—"अजी डाकृर साहब झाड़ फूंक न कीजिए, चिकित्सा कीजिए चिकित्सा।" सम्भव है कि सिविल सर्जन साहब आंखें लाल पीली करके यह कहने लगे कि- "तुम कौन हो! हम डाकृर ठहरे. हम जो कुछ करें वही डाकृरी है।" भय से यदि बुद्धि बिगड़ न जाय तो हमें उस से यह कहने का अधिकार है-"ऐसा नहीं हो सकता जिस डाकृरी विद्या को पढ़ कर तुम डाकृर हुए हो उसे हम तुम से बड़ा समझते हैं। उसी के मूल्य से तुम्हारा मूल्य है।"

इस अधिकार का सब से बड़ा ज़ोर डाकृरी शास्त्र और धर्म नीति में चलता है। डाकृर चाहे जितनी उछल कूद मचावे परन्तु इस विज्ञान और नीति के ज़माने में उसे अन्त में लज्जित ही होना पड़ेगा। सम्भव है कि वह क्रुद्ध हो कर हमारे घूंसे भी लगावे। परन्तु हमारी सलाम और सलामी की अपेक्षा इस घूंसे का मूल्य बढ़ कर है। इस घूंसे से वह हमें जितना मारता है अपने को उस से बढ़ कर मारता है। इसी लिए कहते हैं कि जो बात अंगरेज़ों की बात नहीं है, किन्तु केवल अंगरेज़ी अमलों अहलकारों की

बात है उसे यदि हम न माने तो आज दुःख मिल सकता है परन्तु कल दुःख का नाश हो जायगा।

भारत में अंगरेज़ी राज्य के डेढ़ सौ वर्ष बीत जाने पर आज यह सुना जाता है कि मद्रास गवर्नमेन्ट भला बुरा चाहे जो करे परन्तु बंगाल वालों को उस पर बिचार करने और सहानुभूति प्रकट करने का कोई अधिकार नहीं। अब तक हम यही समझते थे कि अंगरेज़ों के अखण्ड शासन में मद्रास, बंगाल, पञ्जाब और महाराष्ट्र देश भीतर बाहर से एक हो रहे हैं। अंगरेज़ों के लिए यह गौरव की बात है और उन के साम्राज्य के मुकुट का यह कोहनूर रत्न है बेलजियम और फ्रान्स की दुर्गति को अपनी दुर्गति समझ कर अंगरेज़ युद्धक्षेत्र में प्राण दे रहे हैं; समुद्र पार पश्चिम में अब यह दशा है तब समुद्र के इस पार पूर्व में क्या ऐसी नीति चल सकती है कि मद्रास वालों के सुख दुःख में बंगाली अपना सुख दुःख न मानें ? ऐसी आज्ञा क्या हम लोग सिर झुका कर कभी मान सकते हैं ? क्या हम लोग यह बात नहीं जानते कि प्रकट में यह आज्ञा चाहे जैसे ज़ोर के साथ दी जाय परन्तु इस के भीतर एक विकट लज्जा का भाव भरा हुआ है ? अंगरेज़ों की इस अन्याय जनित गुप्त लज्जा के साथ हमें अपने मनुष्यत्व के प्रकट साहस को मिला देना चाहिए। अंगरेज़ भारतवर्ष के सामने सत्य प्रतिज्ञा में बंधे हुए हैं और वे यहां पर यूरोपीय सभ्यता का दायित्व लेकर आये हैं। इस सभ्यता की वाणी ही उनकी प्रतिज्ञा की वाणी है। इस दस्तावेज़ को ही हम लोग सब से बड़ी दस्तावेज़ समझते हैं। अंगरेज़ों को हम यह कभी न कहने देंगे कि हम

भारतवर्ष को टुकड़े टुकड़े करने के लिए समुद्र पार करके यहां आये हैं।

जिस जाति को जो कोई बड़ी सम्पदा प्राप्त होती है वह देश देशान्तरों को दान करने ही के लिए प्राप्त होती है। यदि वह जाति कृपणता करती है तो उस की वह सम्पदा नष्ट हो जाती है। यूरोप की प्रधान सम्पदा विज्ञान, जनसत्ता और आत्मशासन है। यही सम्पदा भारतवर्ष को देने का महान दायित्व ही भारत में अंगरेज़ी शासन का विधिवत राज परवाना है। शासन कर्ताओं को यह बात याद दिलाते रहने का भार हमारे ऊपर भी है। क्योंकि दोनों पक्ष का योग हुए बिना विस्मृतिऔर विकार घट सकता है।

अंगरेज़ अपने इतिहास की दोहाई दे कर वह बात कह सकते हैं कि हमने आत्मशासन के महत्व को अनेक विप्लवों के द्वारा सीखा है और नाना प्रकार की साधनाओं के पश्चात् उसे प्राप्त किया है। यह बात हम भी मानते हैं। संसार में भिन्न २ अग्रगामी दल–भिन्न २ बातों का आविष्कार करते हैं। उन आविष्कारों के करने में अनेक भूलें होती हैं, बहुत से दुःख सहे जाते हैं और नाना प्रकार के त्याग किये जाते हैं। परन्तु जो लोग उन आविष्कारों से लाभ उठाते है उन्हें उन भूलों, दुःखों और त्यागों का लम्बा रास्ता तय नहीं करना पड़ता। एक उदाहरण सुनिये। जो लोग इनजीनियरिंग सीखते हैं उन्हें आग पर पानी की भरी बटलोई चढ़ा कर यह देखने की ज़रूरत नहीं पड़ती कि बटलोई के ऊपर रक्खी हुई कटोरी भाफ़ के ज़ोर से किस तरह उछलती है। यदि उन्हें ऐसा करना पड़े और शुरू से

लेकर अब तक जिस जिस प्रकार इनजिनियरिङ्ग से सम्बन्ध रखने वाली भिन्न २ बातों का आविष्कार हुआ है वह सब सीखना और अपने हाथ से करना पड़े तो दश हज़ार वर्ष की सतयुगी आयु पाने पर भी मनुष्य कभी इनजिनियरिङ्ग नहीं सीख सकता और न वह प्रलय काल तक पक्का इन-जिनियर ही हो सकता है; न वह उस से स्वयं ही फायदा उठा सकता है और न दूसरों ही को लाभ पहुंचा सकता है। यूरोप को जो उन्नति करने में सैकड़ों हज़ारों वर्ष लगे वही उन्नति जापान ने थोड़े से समय में कर ली। यदि यह कहा जाय कि हम में आत्मशासन शक्ति का अभाव है तब तो इस बात की और भी सख्त ज़रूरत है कि हम लोग आत्म-शासन के लिए कोशिश करें। यदि किसी व्यक्ति विशेष के सम्बन्ध में यह पहले ही से मान लिया जाय कि उस में कुछ नहीं है और वह किसी लायक़ नहीं तो यह निश्चय है कि जो कुछ गुण उस व्यक्ति में होंगे वह कभी भी प्रगट न होंगे और वह सदा नालायक का नालायक ही बना रहेगा। इस लिए कृपया आत्मशासन का सुयोग दे कर हमें अपनी आन्तरिक शक्ति प्रकट करने का रास्ता खोल दीजिए। यदि उसको बन्द रख कर हमारी अवज्ञा करोगे और संसार में हमे सदा अवज्ञा भाजन बनाये रक्खोगे तो इस से बढ़ कर परम शत्रुता और क्या हो सकती है। दहने बांये दो क़दम आगे बढ़ाते ही जिस का माथा दीवार से टकराता है क्या उस के मन में वह बड़ी आशा कभी टिक सकती है जिस के ज़ोर से मनुष्य अपने महत्व को प्राण देकर भी सिद्ध कर देता है?

देखते हैं कि इतिहास में जिस समय सवेरा होता है उस समय सूर्य्य पूर्व दिशा में निकलते हैं ; परन्तु साथ ही साथ उत्तर दक्षिण और पश्चिम में भी प्रकाश फैल जाता है। यदि एक २ इंच करके जातियों की उन्नति होती तो महा काल को भी हार मानना पड़ती। मनुष्य को पहले सम्पूर्ण योग्य बनना चाहिए तब उसे सुयोग प्राप्त होगा यदि यह बात सत्य है तो हम कह सकते हैं कि पृथ्वी मण्डल की कोई भी जाति आज भी स्वाधीनता के योग्य नहीं हुई। आप लोग डिमाक्रेसी का घमण्ड करते हैं। परन्तु याद रखिये कि यूरोप के जन साधारण में आज भी प्रचुर वीभत्सता भरी हुई है। यदि कोई कर्णधार यह कहता कि जब तक यह वीभत्सता यूरोप में बनी रहेगी तब तक जन साधारण कोई भी अधिकार प्राप्त न कर सकेंगे तो इसका नतीजा यह होता कि वीभत्सता तो बनी ही रहती उलटे इस पाप के स्वाभाविक प्रतिकार का उपाय भी हाथ से निकल जाता।

इसी तरह हमारे समाज में हमारी व्यक्ति स्वातन्त्र्य की धारणा में यथेष्ट दुर्बलता है यह बात यदि हम छिपाना चाहें तब भी नहीं छिप सकती। परन्तु हम तब भी आत्मशासन चाहते हैं। अंधेरे घर के एक ही कोने में यदि चिराग टिम टिमा रहा हो तो यह ठीक नहीं मालूम होता कि दूसरे कोने में चिराग क्यों न जलाया जाय। जैसे बने तैसे दीपक जलाना चाहिए। आज मनुष्यत्व के दीपावली महोत्सव में कोई भी देश अपने सब दीपक पूरे २ नहीं जला सकता तब भी उत्सव मनाया जा रहा है। हमारे घर

का चिराग कुछ दिनों से बुझ गया है। तुम्हारे दीपक की सहायता से यदि हम उसे जलाना चाहते हैं तो तुम बुरा क्यों मानते हो। यह कोई अच्छी बात नहीं है। बताओ तो सही तुम्हारा इस में नुक़सान ही क्या है। तुम्हारा प्रकाश तो कुछ कम हो ही न जायगा, उलटे उत्सव का प्रकाश बढ़ जायगा।

उत्सव के देवता आज हम लोगों को भीतर से बुला रहे हैं। पण्डे क्या हमें रोक कर धोखे में रख सकते हैं? पण्डे केवल धनी यजमान को देख कर ही प्रसन्न होते हैं। कनाडा और आस्ट्रेलिया को प्रसन्न रखने के लिए वे कोई बात नहीं उठा रखते। परन्तु ग़रीब यजमानों के साथ उनका व्यवहार उलटा होता है। अब तो यह सहा नहीं जाता। देवता भी इस बात को देख रहे हैं। इस से स्वयं अन्तर्यामी यदि लज्जारूप से भीतर नहीं दिखाई देते तो निश्चय जानो कि क्रोध रूप से वे बाहर अवश्य दिखलाई देंगे।

परन्तु आशा का कारण उनके बीचमें भी है और हमारे बीच में भी है। हम जानते हैं कि हमारे देश के युवक योवनधर्म को चिरकाल तक न भूले रहेंगे। इसके सिवा अंगरेज़ों में भी ऐसे बहुत से महात्मा पाये जाते हैं जो स्वजाति वालों के द्वारा अपमानित होने पर भी अंगरेज़ी इतिहास वृक्ष का अमृत फल भारत वासियों को भी चखाना चाहते हैं। हम अपने यहां भी ऐसे मनुष्य चाहते हैं जो बाहर वालों के द्वारा दिये हुए दुःख और स्वजनों की धिक्कार सहने को तैयार हों; जो विफलता की आशंका को पार करके भी मनुष्यत्व प्रकाश करने के लिए व्याग्र हों।

भारतवर्ष के जरा विहीन जाग्रत भगवान् आज हमारी उस आत्मा का आवाहन कर रहे हैं जो अपरिमेय और अपराजित है तथा अमृतलोक में जिसका अनन्त अधिकार है और जो आत्मा आज अन्ध प्रथा और प्रभुत्व द्वारा अपमानित होकर अपना मुंह धूल में छिपाए हुए है। इसी से अघात पर अघात और वेदना पर वेदना देकर भगवान् कह रहे हैं आत्मानम् विद्धि अपने को जानो।

आज हम अपने सामने देख रहे हैं कि यह मनुष्यों से परिपूर्ण पृथ्वी कैसी वृहत् है और मनुष्यों का इतिहास कैसा महान् है। मनुष्यों में भूमा को हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। शक्ति के रथ पर चढ़ कर आज वे महाकाल के राज पथ पर चले जा रहे हैं। रोग, ताप, विपद्, मृत्यु, उनके रास्ते को किसी तरह नहीं रोक सकती। विश्व प्रकृति उन्हें वर्णमाला पहना कर वरण कर चुकी है। ज्ञान के प्रकाश मान तिलक से उनका उच्च ललाट उज्वल हो रहा है। बहुत दूर भविष्यत के शिषर चूणा पर से उनकी अगवानी के लिए नौबत बज रही है। वही भूमा आज हमारे बीच में भी अपना आसन ढूंढ़ रहे हैं। अरे अकाल ज़रा जर्जरित, आत्म-अविश्वासी भीरु, असत्यभारावनत मूढ़, आज घर वालों के साथ छोटी छोटी बातों पर लड़ने झगड़ने का दिन नहीं है; आज छोटे छोटे पदों के लिए कंगालों की तरह एक पर एक टूट पड़ने का समय नहीं रहा अब उस मिथ्या अहंकार से अपने को भुलाये मत रक्खो जो घर के एक अंधेरे कोने में लालित पालित हुआ है और जो विराट विश्वसभा के सामने मुंह नहीं दिखला सकता।

दूसरों की निन्दा करके प्रसन्न होना निर्बलों और निकम्मों का काम है। हम लोगों को इस से बचना चाहिए युग युग में हमने जो ढेर के ढेर अपराध किये हैं वे सब एक के ऊपर एक जमा होते गये हैं। उन के बोझ से हमारा पौरुष दब गया है और हमारी विचार बुद्धि मृतप्राय हो चुकी है। सैकड़ों वर्ष के जमा हुए उसी मैल को हमें आज बल के साथ हटा देना चाहिए। हमारा पिछला समय हमें आगे बढ़ने से रोकता है। हमारे अतिथ ने अपने सम्मोहन वाणों के द्वारा हमारे भविष्यत् पर आक्रमण किया है। अपनी गर्द व गुबार के ढेर से उसने आज नवीन युग के प्रभात सूर्य्य को मलीन कर रक्खा है। उसने हमारे अध्यवसाय-शील, योवनधर्म को दबा दिया है। आज हम अपने पूरे बल के साथ उस से मुक्ति प्राप्त करेंगे। तभी आगे बढ़ने वाले महान मनुष्यत्व के साथ हमारा योग होगा और तभी हम असीम व्यर्थता की लज्जा से बच सकेंगे। हम वह मनुष्यत्व प्राप्त करना चाहते हैं जो मृत्युञ्जयी, चिर जागरुक और चिर सन्धानरत है और जो विश्वकर्मा का दाहना हाथ है तथा ज्ञान ज्योति से प्रकाश मान सत्य-पथ का जो यात्री है और जिस की जयध्वनि युग २ के नये नये "तोरण द्वारों पर उच्छ्वसित होकर देश देशान्तर में गूंज रही है। बाहर वालों के द्वारा दिया हुआ दुःख श्रावण की धारा की तरह हमारे सिर पर निरन्तर बरसता रहा है। सैकड़ों वर्षों से यह दुःख सहते २ हम लोगों में कुछ तामसिक अपवित्रता आ गई है। आज उसका प्रायश्चित करना होगा। अच्छा तो इसका प्रायश्चित क्या है?

इसका प्रायश्चित यह है कि अब अपनी इच्छा से दुःख सहो। इस दुःख को ही पवित्र होमाग्नि समझो। इसी अग्नि में तुम्हारे सब पाप जल कर भस्म हो जायंगे, तुम्हारी मूढ़ता भाफ़ बन कर उड़ जायगी और तुम्हारी जड़ता राख बन कर मिट्टी में मिल जायगी हे प्रभु! तुम दीन जनों के प्रभु नहीं हो। हम लोगों में जो अदीन हैं, अमर हैं, प्रभुत्वशाली और ऐश्वर्यवान हैं, हे भगवन्! तुम उन्हीं के प्रभु हो उन्हें अपने राज सिंहासन के दाहिनी ओर बुलाओ। दीन लज्जित हों, दास लाञ्छित हों और मूढ़ तिरस्कृत होकर चिर निर्वासन ग्रहण करें।

समाप्त

॥ सूचना ॥

हम अपने अपरिचित ग्राहकों को सहर्ष सूचित करते हैं कि यह चर्च मिशन काग्रीगेशनल प्रेस लखनऊ का हमने नीलाम में मोल ले लिया है। इसमें अब हर तरह की छपाई सुन्दर और शुद्धता से होती है। हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी इत्यादि चाहे जिसमें जो कुछ आपको छपवाना हो इस प्रेस को भेजिए ठीक समय पर छापकर भेजा जायगा तिसपर भी दाम दूसरों के मुक़ाबिले में कम होंगे। बुकसेलरों के लिये खास रियायत रक्खी गई है आशा है कि आप लोग इस प्रेस को अपना ही समझ कर योग्य कार्य्य से हमेशा याद करते रहेंगे ॥

निवेदक—

पुरुषोत्तम लाल चतुर्वेदी मैनेजर,

चर्च मिशन काग्रीगेशनल प्रेस

२९ लालबाग रोड,

लखनऊ.